मा भूदाक्षमपीडेति परिमेयपुरःसरौ ।

अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव ।।37।।

अन्वय आश्रमपीडा मा भूत् इति (हेतोः) परिमेयपुरः सरौ तु अनुभावविशेषात् सेनापरिवृतौ इव (स्थितौ)।

अनुवाद (यद्यपि) उन दोनों ने आश्रमवासियों (ऋषियों) के कार्य में बाधा न हो, इस उद्देश्य से अपने साथ थोड़े ही सेवक ले रखे थे, फिर भी अपने प्रताप व तेज के कारण वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो सेना से घिरे हुए हों।

टिप्पणियां

मा भूत् 'मा' निषेधार्थक अव्यय है। 'भूत्' भू धातु का लुङ् लकार में अन्य पुरुष एकवचन रूप है जिसका यहां इच्छा या आशा के अर्थ में प्रयोग हुआ है। 'भू' धातु का लुङ् लकार में 'अभूत्' रूप होता है। परन्तु जब निषेधार्थक 'मा' अव्यय का प्रयोग हो तथा इच्छा या आशा का अर्थ इष्ट हो तो धातु से पूर्व 'अ' आगम का लोप होकर 'भूत्' रूप रह जाता है। इसीलिए 'मा भूत्' है।

विशेष प्राचीन भारत में क्षत्रिय राजा राजसत्ता के अधिकारी एवं शक्तिशाली होने पर भी ब्राह्मणों, विशेष रूप से तपोवन में वास करने वाले तपस्वियों और ऋषि, मुनियों का अत्यधिक आदर-सम्मान किया करते थे। वे राजसत्ता का अभिमान छोड़कर विनीत होकर उनसे मिलते थे। वे सदा इस बात का ध्यान रखते थे कि ऋषि-मुनियों के धार्मिक अनुष्ठान में कोई बाधा न हो। इसीलिए राजा दिलीप जब वशिष्ठ ऋषि से मिलने के

लिए आए तो उनकी वेशभूषा साधारण थी और उनके साथ राजकीय वैभव का प्रतीक विशाल सेना नहीं थी। उन्होंने अपने साथ थोड़े से ही सेवक रखे थे क्योंकि वे बड़ी सज धज से साथ आश्रम में प्रवेश करके वहां को लोगों के धार्मिक अनुष्ठान में किसी प्रकार की बाधा या अव्यवस्था उत्पन्न करना नहीं चाहते थे। तप और शान्ति के स्थान आश्रम में राजकीय आडम्बर से प्रवेश करना औद्धत्य का सूचक माना जाता है। अतः अपने कुलगुरु वशिष्ठ से राजा दिलीप विनीत वेष में तथा थोड़े से सेवकों को ही साथ लेकर मिलें। इसी प्रकार के भाव अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी व्यक्त किए गए हैं.

तपोवनवासिनाम् उपरोधो मा भूत्, अत्रैव रथं स्थापय। विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम। **(अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक)**

परिमेयपुरस्सरौ परिमेयाः (परि उपसर्ग मा धातु यत्) पुरः सुराः (पुरस् उपसर्ग सृ धातु अच्) ययोः तौ (बहुव्रीहि), परिमेय (थोड़े-से, दो-चार) पुरस्सर (सेवक)। जिनके साथ थोड़े-से ही सेवक थे। दिलीप-सुदक्षिणा का विशेषण है।

अनुभाव विशेषात् अनुभावस्य विशेषात् इति (षष्ठी तत्पुरुष)। अपने विशेष अनुभाव, प्रताप अथवा तेज के कारण।

सेनापरिवृतौ सेनया परिवृतौ (परि कृ प्रथमा विभक्ति द्विवचन) इति तृतीया तत्पुरुष। सेना से घिरे हुए अर्थात् उनका दिव्य प्रताप मात्र ही उनकी सेना था (अन्य सेना तो मात्र अलंकरण थी)।